ART • CULTURE • FASHION

FEATURE

राजा रवि वर्मा की कला और बदलता सांस्कृतिक परिदृश्य

समकालीन परिदृश्य में राजा रवि वर्मा की कला एक जटिल सांस्कृतिक विडंबना का रूप लेती दिखाई देती है, जहाँ वह अपनी मूल जनोन्मुखी आकांक्षा से हटकर एक विशिष्ट वर्ग के उपभोग की वस्तु बनती जा रही है। हाल ही में एक फैशन डिज़ाइनर द्वारा वर्मा की कृतियों से प्रेरित परिधान, जिसे करण जौहर ने धारण किया, इस परिवर्तन का दृश्यात्मक उदाहरण है। यहाँ कला दीवारों से उतरकर देह पर आती है, परंतु इस रूपांतरण में उसका लोकतांत्रिक स्वभाव कहीं विलुप्त होता प्रतीत होता है।

लेखक —
भूपेंद्र कुमार अस्थाना
वरिष्ठ कलाकार,
लखनऊ

राजा रवि वर्मा का ऐतिहासिक योगदान केवल उनकी चित्रकला तक सीमित नहीं था; उन्होंने औपनिवेशिक भारत में दृश्य-संस्कृति के प्रसार का एक नया अध्याय रचा। ओलियोग्राफ के माध्यम से उन्होंने अपनी पौराणिक छवियों को जन-जन तक पहुँचाया—यह कला का अभिजात्य दायरे से बाहर निकलकर लोक में प्रवेश था। उनके लिए हिंदू कोई राजनीतिक या बहिष्कारी पहचान नहीं, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक संवेदन था, जो विविधताओं को समाहित करता था। उनकी कृति गैलेक्सी ऑफ म्यूजिशियन इस बहुलता की सजीव अभिव्यक्ति है, जहाँ भिन्न-भिन्न समुदायों की स्त्रियाँ एक ही सौंदर्यात्मक धरातल पर सह-अस्तित्व में दिखाई देती हैं। किन्तु समय के साथ यह सौंदर्यात्मक दृष्टि वैचारिक और राजनीतिक पुनर्पाठों के अधीन होती चली गई। वर्मा जिस ऐतिहासिक क्षण में सक्रिय थे, वह भारत की सांस्कृतिक पहचान के निर्माण का समय था, पर उनकी कला ने प्रत्यक्ष राजनीतिक हस्तक्षेप के बजाय छवियों के माध्यम से एक सांस्कृतिक एकात्मता का स्वप्न रचा। वर्मा की कला की यात्रा स्वयं भारतीय समाज की बदलती संरचना का रूपक बन जाती है-

शेष भाग पृष्ठ -2 पर

एक समय वह घरेलू पूजा-कक्षों में उपस्थित थी, फिर वह सांस्कृतिक स्मृति में धुँधली पड़ी,फिर टेलीविजन पर कुछ सीरियल्स के माध्यम से पुनर्जीवित हुई,और आज वह वैश्विक कला-बाज़ार में उच्च मूल्य की वस्तु के रूप में प्रतिष्ठित है। यहीं पर सम्मान का कीमत में रूपांतरण एक गहरे सांस्कृतिक व्यंग्य के रूप में सामने आता है। जो कला कभी सामूहिक स्मृति और आस्था का हिस्सा थी, वह अब नीलामी-गृहों और विशिष्ट संग्रहों तक सीमित हो गई है। फैशन के माध्यम से वर्मा की छवियों का पुनर्प्रयोग इस विमर्श को और जटिल बना देता है। यह एक ओर कला की अंतर्विषयी संभावनाओं को उद्घाटित करता है, तो दूसरी ओर उसे एक प्रदर्शनात्मक उपभोग में परिवर्तित कर देता है—जहाँ 'देखना' ही प्रमुख है, 'जीना' नहीं। इस प्रकार, वर्मा की कला का यह रूपांतरण केवल शैलीगत नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थों में गहन है। यह हमें उस मूल प्रश्न की ओर लौटने के लिए बाध्य करता है—क्या कला आज भी समाज की साझी संवेदना का माध्यम है, या वह धीरे-धीरे विशिष्टता और वैभव के प्रदर्शन में रूपांतरित हो चुकी है ?

> क्या कला आज भी समाज की साझी संवेदना का माध्यम है,
> या वह धीरे-धीरे विशिष्टता और वैभव के प्रदर्शन में रूपांतरित हो चुकी है ?